# प्रस्तावना

पवित्र बाइबल के इस रुपान्तर को विशेष रुप से साधारण लोगों, बच्चों, तथा उन लोगों के लिये जिन्होंने हाल ही में पढ़ना–लिखना शुरु किया है, तैयार किया गया है। इस बात को ध्यान में रखते हुए अनुवादकों का यह प्रयास रहा है कि वे सरल शब्दों तथा छोटे–छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करे।

इस रुपान्तर का मार्गदर्शन, उत्तम अनुवाद उत्तम संचार की धारणा ने किया है। अनुवादकों ने इस का विशेष ध्यान रखा है कि वह पाठकों के सामने बाइबल के लेखकों का सन्देश उसी स्वाभाविकता तथा वास्तविकता से प्रस्तुत करे जैसा की मूल भाषा में पुराने समय के लोगों के सामने पेश किया गया था। (एक विश्वसनीय अनुवाद का अर्थ केवल मूल भाषा के शब्दों को शब्दकोष से मिलाना ही नहीं बल्कि वह तो एक ऐसी प्रकिया है जिस के द्वारा मूल सन्देश इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि न केवल उस का अर्थ ही संप्रेषित हो, बल्कि वह सुनने में भी उतना ही सही तथा उसी प्रकार आकर्षक हो और प्रभाव भी वैसा ही हो जैसा हजारों वर्ष पूर्व अनुभव किया जाता था।)

इसलिए इस शास्त्र के अनुवाद में अनुवादकों के लिये प्रभावशाली संचार का अत्यन्त महत्व रहा है। परन्तु संचार की इस इच्छा ने परिशुद्धता की महत्व को कम नहीं किया। लेकिन "परिशुद्धता" का अर्थ यह समझा गया है कि विचारों को विश्वसनीय ढंग से व्यक्त किया जाये, न कि उनकी रूपात्मक विशेषताओं का यथार्थ सामंजस्य किया जाये।

धर्मशास्त्र के लेखकों ने, विशेषकर नया नियम की रचना करने वालों ने, भाषा तथा शैली का प्रयोग करते समय उत्तम संचार का विशेष ध्यान रखा है। इस अनुवाद को तैयार करने में भी इस बात को ध्यान में रखा गया है। और इसलिए ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है जिस के द्वारा हिन्दी भाषा बोलने वालों के सामने शास्त्रों के सत्य अपने को पूरी तरह प्रकट कर सकें।

इस रुपान्तर में कई विशेषताओं का प्रयोग हुआ है जिससे समझने में पूरी सुविधा का अनुभव हो। पुस्तक में प्रयोग किये गये कठिन तथा अस्पष्ट शब्दों के तुरन्त बाद अक्सर संक्षिप्त व्याख्या या समानार्थ देखने को मिलते हैं। इन व्याख्यात्मक शब्दों को कोष्ठक सहित नियर्गक्षरों में लिखा गया है। जिन शब्दों या मुहावरों में विस्तृत स्पष्टीकरण की अपेक्षा होती है, उनको तारक चिन्हों का प्रयोग करके पन्ने के अन्त में फुटनोटों द्वारा समझाया गया है। इस के अतिरिक्त शास्त्रीय उदाहरणों की पहचान तथा परिवर्तित पठन भी कभी कभी फुटनोटों द्वारा दिये गये है।

# भूमिका

"बाइबल" शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है "किताबें।" वास्तव में बाइबल दो पुस्तकों का संग्रह है, जिन्हें "पुराना नियम" तथा "नया नियम" कहा जाता है। अनुवादित शब्द "टेस्टामेन्ट", प्राय: एक वाचा या समझौते के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह शब्द परमेश्वर का, अपने भक्तों के प्रति प्रतिज्ञा एवं आशीर्वाद का हवाला देता है। पुराना नियम रचनाओं का वह संग्रह है और उस वाचा से सम्बन्धित है, जिसे परमेश्वर ने, मूसा के समय में, यहूदी लोगों (इस्राएलियों) के साथ किया था। "नया नियम" उन रचनाओं का संग्रह है जिन का सम्बन्ध उस समझौते से है, जो परमेश्वर ने उन लोगों के साथ किया, जो यीशु मसीह पर विश्वास रखते हैं।

पुराने नियम के लेख, परमेश्वर के उन महान कार्यों का विवरण देते हैं जो परमेश्वर के द्वारा यहूदी लोगों के साथ हुए व्यवहार को बताते हैं, तथा परमेश्वर की उस योजना के विषय में भी बताते हैं जिस के द्वारा इन लोगों को सारे संसार पर आशीर्वाद लाने के लिये प्रयोग किया गया। ये लेख, आनेवाले मुक्तिदाता (मसीहा) की ओर भी इशारा करते हैं जिस को परमेश्वर अपनी योजना के अनुसार भेजने वाला था। नये नियम के लेख, पुराने नियम की कथा का परिणाम है। ये आनेवाले मुक्तिदाता (यीशु मसीह) तथा सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिये उसके आने के महत्व को समझाते हैं। नये नियम की पुस्तकों को समझने के लिये पुराना नियम को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि पुराना नियम आवश्यक पृष्ठभूमि प्रदान करता है और नया नियम उद्धार की उस कथा को, पूरा करता है जो पुराने नियम में आरम्भ हुई।

**पुराना नियम:**
पुराने नियम के लेख 39 पुस्तकों का वह संग्रह है जिसे विभिन्न लेखकों ने लिखा है। यह अधिकतर हिब्रू भाषा में लिखी गयी है, जो प्राचीन इस्राएल की भाषा हुआ करती थी। कुछ खण्ड अरामी भाषा में भी लिखे गये हैं जो बाबेल राज्य की सरकारी भाषा थी। "पुराने नियम" के कुछ खण्ड तीन हजार पाँच सौ वर्ष पूर्व लिखे गये थे और इस नियम की पहली पुस्तक और अंतिम पुस्तक के बीच, लगभग एक हजार वर्ष से भी अधिक समय का अंतराल है। इस संग्रह में व्यवस्था, इतिहास, गद्य, गीत, भजन और विवेकी पुरुषों के उपदेश सम्मिलित हैं।

"पुराना नियम" प्राय: तीन प्रमुख खण्डों में विभाजित किया गया है–व्यवस्था, भविष्यवक्ता तथा पवित्र लेखन। व्यवस्था खण्ड में पाँच पुस्तकें हैं जो "मूसा की पाँच पुस्तकें" कहलातीं हैं। इस में पहली पुस्तक उत्पत्ति है, जो संसार के आरम्भ के विषय में बताती है अर्थात् पहले पुरुष और स्त्री तथा परमेश्वर के प्रति उनके पहले अपराध का ब्योरा देती है। इस पुस्तक में "महा जलप्रलय" और उसमें से परमेश्वर के द्वारा उस परिवार के बचाये जाने तथा इस्राएल के राष्ट्र के आरम्भ, जिन लोगों को परमेश्वर ने आदि समय से एक विशेष उद्देश्य हेतु प्रयोग करने के लिये चुना था, के बारे में भी विवरण देता है।

**इब्राहीम की कथा:**
परमेश्वर ने इब्राहीम के साथ एक वाचा की। इब्राहीम एक बहुत भरोसेमंद व्यक्ति था। उस वाचा में परमेश्वर ने इब्राहीम को एक महान राष्ट्र का पिता बनाने का तथा उसे और उसके वंशजों को कनान देश की भूमि देने का वचन दिया। यह दिखाने के लिये कि इब्राहीम ने इस वाचा को स्वीकार कर लिया, उस का ख़तना किया गया और फिर ख़तना परमेश्वर और उसके लोगों के बीच हुई इस वाचा का सबूत बन गया। इब्राहीम को समझ में नहीं आया कि उन बातों को परमेश्वर कैसे पूरा करेगा जिनका उसने वचन दिया है किन्तु इब्राहीम को परमेश्वर पर पूरा भरोसा और विश्वास था, इस से परमेश्वर बहुत अधिक प्रसन्न हुआ।
परमेश्वर ने इब्राहीम को आदेश दिया कि वह मैसोपोटामिया–हिब्रूओं के बीच से अपना घर छोड़ दे और परमेश्वर उसे कनान की (जिसे पलिश्तीन भी कहा जाता है), भूमि की ओर ले गया जिसे उसको देने का वचन दिया गया था। बुढ़ापे में इब्राहीम को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम इसहाक था। इसहाक को याकूब नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। याकूब (वह इस्राएल भी कहलाता है) के बारह पुत्र और एक पुत्री हुई। यह परिवार आगे चलकर इस्राएल राष्ट्र बना किन्तु अपने जनजातीय मूल को इस ने कभी नहीं भुलाया। वह अपने आपको इस्राएल के बारह कबीलों (या "परिवार समूहों") से सम्बन्धित बताता रहा। ये कबीले याकूब के बारह पुत्रों के वंशज थे। ये बारह पुत्र थे:–रूबेन, शिमोन, लेवी, यहूदा,

इस्साकार, जबूलून, यूसुफ, बिन्यामीन, दान, नप्ताली, गाद, और आशेर। इब्राहीम, इसहाक और याकूब (इस्राएल) इस्राएल के "पूर्वजों" अथवा "मुखियाओं" के रूप में जाने जाते हैं।

इब्राहीम एक अन्य प्रकार का "पिता" भी था। प्राचीन इस्राएल में अक्सर परमेश्वर ने कुछ विशेष व्यक्तियों को अपना सन्देशवाहक बनाने के लिये चुना था। परमेश्वर के वे सन्देशवाहक या नबी, लोगों के लिए परमेश्वर के प्रतिनिधि थे। इन नबियों के द्वारा परमेश्वर ने इस्राएल के लोगों को वचन, चेतावनियाँ, व्यवस्था, शिक्षाओं व अनुभवों पर आधारित उपदेश तथा भावी घटनाओं पर आधारित निर्देश दिये। शास्त्रों में "इब्राहीम–हिब्री" का प्रथम नबी के रूप में उल्लेख हुआ है।

## दासता से इस्राएल का छुटकारा

याकूब (इस्राएल) का परिवार बढ़ता गया और उस में लगभग सत्तर अन्य सीधे वंशज शामिल थे। उसके पुत्रों में से एक यूसुफ था जो मिस्र का एक ऊँचा अधिकारी था। कठिन समय था, इसलिए याकूब और उसका परिवार मिस्र चले गये, जहाँ खाने–पीने को बहुत था और जीवन अधिक सुविधापूर्ण था। हिब्रुओं का यह कबीला, एक छोटी सी जाति के रूप में विकसित हुआ और फिर मिस्र के राजा फ़िरौन ने इन लोगों को दास बना लिया। निर्गमन की पुस्तक हमें बताती है कि चार सौ वर्ष की दासता के बाद अपने लोगों को मिस्र से छुटकारा दिलाने के लिए परमेश्वर ने नबी–मूसा को भेजा। मूसा इस्राएल के लोगों को वापस पलिश्तीन ले आया। छुटकारे का मूल्य भारी था किन्तु यह मूल्य मिस्र के लोगों ने दिया। फ़िरौन और मिस्र के सभी परिवारों को अपने पहलौठे पुत्रों को खोना पड़ा और इसके बाद ही फ़िरौन ने इस्राएलियों को स्वतन्त्र किया। इन लोगों के छुटकारे के लिये, पहलौठों को मरना पड़ा। इस्राएल के लोग, अपनी उपासना तथा बलियों में, इस घटना को अनेक प्रकार से स्मरण करते रहे।

इस्राएल के लोग अपनी स्वतंत्रता की यात्रा के लिए तैयार थे। वस्त्र पहन कर मिस्र से भाग निकलने के लिए वे तैयार हो गये। प्रत्येक परिवार ने एक मेमने को काट कर उसको भूना। प्रत्येक परिवार ने परमेश्वर के प्रति एक विशेष प्रतीक के रूप में, अपने घरों के दरवाजों की चौखटों पर मेमने के लहू को लगाया। उन्होंने शीघ्रता से अख़मीरी रोटी पकाई और उस को खाया। उस रात यहोवा का दूत उस धरती पर से होकर गुज़रा और जिस घर की चौखट पर मेमने का लहू नहीं लगा था उस परिवार के पहलौठे की मृत्यु हो गई। इस्राएल के लोगों को छुटकारा मिल गया, किन्तु जैसे ही दास मिस्र छोड़ने वाले थे फ़िरौन का मन बदल गया और उसने उनको पकड़कर वापस ले आने के लिए अपनी सेना को भेजा, किन्तु परमेश्वर ने अपने लोगों की रक्षा की। परमेश्वर ने लाल समुद्र को चीर दिया और अपने लोगों को छुटकारा दिलवाने के लिये उन्हें उस पार पहुँचाया, पीछा करने वाली मिस्री सेना वहीं नष्ट हो गयी। तब अरब प्राय द्वीप के आस पास सीनै मरुभूमि में एक पहाड़ पर उन लोगों के साथ परमेश्वर ने एक विशेष वाचा की।

## मूसा की व्यवस्था

परमेश्वर के द्वारा इस्राएल के लोगों को बचाये जाने और सीनै पर उनके साथ की गई वाचा ने, इस जाति को दूसरों से भिन्न बना दिया। इस वाचा में, इस्राएलियों के लिये प्रतिज्ञा और नियम थे। इस वाचा के एक खंड को "दस आज्ञाओं" (टेन–कमान्डमैन्टस) के नाम से जाना जाता है। परमेश्वर द्वारा दिए गए इन आदेशों को, पत्थर की दो पट्टियों पर लिखकर, लोगों को दिया गया। इन आदेशों में वे मूल सिद्धांत विद्यमान थे जिन के आधार पर परमेश्वर की इच्छानुसार इस्राएल के लोगों को अपना जीवन व्यतीत करना था, और अपने परिवार तथा सहवासियों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना था।

आगे चलकर ये आज्ञाऐं और शेष धर्म–नियम तथा सीनै पर्वत पर दिये गये उपदेश "मूसा की व्यवस्था" अथवा केवल "धर्म–नियम" के नाम से प्रसिद्ध हुए। अनेक अवसरों पर, ये दोनों शब्द शास्त्रों की पहली पाँच पुस्तके और समूचे पुराने नियम के लिये भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

दस आदेशों तथा जीवन–यापन के अन्य नियमों के अतिरिक्त मूसा की व्यवस्था में याजकों, बलियों, उपासना और पवित्र दिनों के विषय में नियम विद्यमान हैं। ये नियम लैव्यव्यवस्था में पाये जाते हैं। मूसा की व्यवस्था के अनुसार सभी याजक और उनके सहायक लेवी कबीले से थे और "लेवी" कहलाये जाते थे। सबसे मुख्य और महत्वपूर्ण याजक को "महायाजक" कहा जाता था।

इस व्यवस्था में पवित्र तम्बू या मिलापवाले तम्बू बनाने और इस्राएली लोगों द्वारा परमेश्वर की उपासना के स्थान के विषय में नियम शामिल हैं। इस में परमेश्वर की उपासना में काम आने वाली वस्तुओं के बारे में भी बताया गया है। इस व्यवस्था में, इस्राएली लोगों को यरूशलेम में सिय्योन पर्वत पर मन्दिर बनाने के लिये तैयार किया, जहाँ वे बाद में परमेश्वर की उपासना करने के लिये जाया करते थे। बलियों और उपासना से सम्बन्धित नियमों ने इस्राएलियों को यह जानने के लिए बाध्य कर दिया कि वे एक दूसरे तथा परमेश्वर के प्रति पाप कर रहे हैं। साथ ही इन नियमों ने, इन लोगों को क्षमा किये

जाने तथा आपस में एक दूसरे तथा परमेश्वर से एक बार फिर से जुड़ जाने का मार्ग भी दिखाया। इन बलियों ने उस बलि को ठीक प्रकार समझना भी सिखाया, जिसे परमेश्वर, सारी मानव जाति के हेतु प्रदान करने की तैयारी कर रहा था।

इस व्यवस्था में पवित्र दिनों और पर्वो को मनाने के विषय में भी नियम दिये गये हैं। प्रत्येक पर्व का अपना एक विशेष महत्व था। कुछ अवसर, वर्ष में हर्ष और उल्लास के दिन माने जाते थे जैसे पहले फल का पर्व, "सब्त" यानी यहूदी पर्व अथवा साप्ताहिक भोज (पिन्तेकुस्त या सप्ताहों का पर्व) तथा डेरों का पर्व (सुकोथ)।

कुछ पर्व ऐसे थे, जो परमेश्वर ने अपने लोगों के लिए जो अद्भुत बातें की हैं, उन्हें याद करने के लिए, मनाये जाते थे। "फसह पर्व" ऐसा ही एक पर्व था। प्रत्येक परिवार मिस्र से बच निकलने की घटना को एक बार फिर से स्मरण करता था। लोग परमेश्वर का स्तुतिगान गाते थे। एक मेमना काट कर भोजन तैयार किया जाता था। दाखमधु का प्रत्येक प्याला और भोजन का हर कौर, लोगों को उन बातों को याद दिलाता था, कि किस तरह परमेश्वर ने पीड़ा और दुःख के जीवन से उनको छुड़ाया था।

इनके अतिरिक्त, दूसरे पर्व बड़ी गंभीरता से मनाये जाते थे। प्रत्येक वर्ष "प्रायश्चित्त के दिन" पर लोग अपने बुरे कर्मों को याद करते थे जो उन्होंने दूसरों तथा परमेश्वर के प्रति किये थे। यह दिन पश्चात्ताप का दिन होता था, तथा इस दिन लोग भोजन नहीं करते थे, तथा महायाजक उनके सभी पापों को क्षमा करने के लिये विशेष बलियाँ चढ़ाता था।

"पुराने नियम" के लेखकों के लिए परमेश्वर तथा इस्राएल के बीच हुई वाचा का अत्यधिक महत्व था। प्राय: सभी नबियों की पुस्तकें और पवित्र लेख इस बात पर आधारित हैं कि इस्राएल के राष्ट्र तथा इस्राएल के हर नागरिक ने अपने परमेश्वर के साथ एक अतिविशिष्ट वाचा किये थे। इसे वे "यहोवा की वाचा" अथवा केवल "वाचा" ही कहा करते थे। इतिहास की पुस्तकें उस वाचा के प्रकाश में ही, घटनाओं की व्याख्या करती हैं। व्यक्ति अथवा प्रजा (राष्ट्र) यदि परमेश्वर और उस वाचा के प्रति विश्वासयोग्य हो तो परमेश्वर उन्हें प्रतिफल प्रदान करता था, और यदि लोग, उस वाचा से भटक जाते थे तो परमेश्वर उन्हें दण्ड दिया करता था। परमेश्वर लोगों को, अपने साथ हुई वाचा को याद दिलाने के लिए अपने नबियों को भेजता था। इस्राएल के कवियों ने, परमेश्वर द्वारा अपने आज्ञाकारी लोगों के लिए किये गये अद्भुत कार्यों के गीत गाये और इसी प्रकार उनके लिये, जिन्होंने परमेश्वर को नकारा, उनके कष्टों और उन्हें दिये गये दण्डों पर शोक गीत गाये। वाचा की शिक्षाओं के आधार पर ही इन लेखकों ने अपनी उचित व अनुचित धारणाएँ बनायीं। जब भोले-भाले निर्दोष लोग यातनाएँ भोगते थे, तो कवि यह समझने का प्रयास करते कि ऐसा क्यों हो रहा है।

## इस्राएल का राज्य

प्राचीन इस्राएल की कहानी, लोगों के परमेश्वर को भूल जाने, परमेश्वर द्वारा लोगों को बचाकर निकालने एवं उनका परमेश्वर की ओर लौटने और उनके पुन: परमेश्वर को भूल जाने की कहानी है। लोगों के द्वारा परमेश्वर की वाचा को स्वीकार करने के तत्काल बाद से ही यह कथा-चक्र शुरू हो गया था, और फिर यही कथा-चक्र बार बार घूमता रहा। सीनै पर्वत पर, इस्राएल के लोगों ने परमेश्वर का अनुसरण करना स्वीकार किया था, फिर उन्होंने परमेश्वर के प्रति बगावत कर दी, इस के फलस्वरूप उन्हें चालीस वर्षों तक मरुभूमि में भटकना पड़ा था। अंत में मूसा का सहायक यहोशू उन्हें उस देश में ले गया जिसे उन्हें देने का वचन दिया गया था। यह एक विजय की शुरुआत हुई और इस्राएल को आंशिक रूप से बसाया गया। इस आबादी के बाद, शुरू की कुछ शताब्दियों तक लोगों पर, स्थानीय नेताओं का राज्य रहा जिन्हें "न्यायाधीश" कहा जाता था।

अंत में एक ऐसा समय आया जब लोग किसी एक राजा की इच्छा करने लगे और पहला राजा शाऊल बना। शाऊलने परमेश्वर की आज्ञा का पालन नहीं किया इसलिए परमेश्वर ने दाऊद नाम के एक गड़ेरिये के लड़के को नया राजा बनाने के लिये चुन लिया। शमूएल नबी ने आकर उसके सिर पर तेल डालकर इस्राएल के राजा के रूप में उसका अभिषेक किया। परमेश्वर ने दाऊद को वचन दिया कि यहूदा कबीले के उसके वंशज, इस्राएल के भावी राजा होंगे। दाऊद ने यरूशलेम नगर पर विजय हासिल की और उसे अपनी राजधानी तथा मन्दिर-निर्माण का भावी स्थल बनाया। उसने मन्दिर में सेवा, उपासना के लिए याजकों, नबियों, गीत-लेखकों, संगीतकारों और गायकों को संगठित किया। दाऊद ने स्वयं भी बहुत से गीत (या भजन) लिखे किन्तु परमेश्वर ने उसे मन्दिर का निर्माण नहीं करने दिया।

दाऊद जब बूढ़ा हो गया और मृत्यु-शैय्या पर था, तभी उसने अपने पुत्र सुलैमान को इस्राएल का राजा बना दिया। दाऊद ने अपने पुत्र को सावधान कर दिया था कि वह परमेश्वर का सदा अनुसरण करे और वाचाओं का पालन करता रहे। राजा बनने के बाद सुलैमान ने मन्दिर का निर्माण कराया और इस्राएल की सीमाओं का विस्तार किया। उस समय इस्राएल वैभव का शिखर चूमने लगा। सुलैमान प्रसिद्ध हो गया और इस्राएल सुदृढ़ बन गया।

## यहूदा और इस्राएल–विभाजित राज्य

सुलैमान की मृत्यु पर वहाँ नागरिक विवाद उठ खड़ा हुआ और देश विभाजित हो गया। उत्तर के दस कबीले अपने आप को इस्राएल कहने लगे और दक्षिण के कबीलों ने स्वयं को "यहूदा" नाम दिया (आज का "यहूदी" शब्द, इसी नाम से निकला है)। यहूदा "वाचा" के प्रति सच्चा रहा तथा दाऊद का वंश (राजाओं का परिवार) उस समय तक यरूशलेम पर राज्य करता रहा। आखिर में, यहूदा पराजित हुआ और बाबेल के लोग, यहूदा के लोगों को देश से निकाल कर ले गये।

क्योंकि लोग वाचा का अनुसरण नहीं करते थे इसलिए (उत्तरी राज्य इस्राएल में बहुत से राजवंश आये और चले गये।) अलग–अलग समयों में इस्राएल के राजाओं ने विभिन्न नगरों में अपनी राजधानियाँ बनायीं, इन्हीं में से अंतिम राजधानी थी, शोमरोन। इस्राएल के राजाओं ने प्रजा पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए परमेश्वर की उपासना का ढंग बदल दिया था, उन्होंने नये याजक चुने और दो नये मन्दिरों का निर्माण कराया एक इस्राएल की उत्तरी सीमा पर दान में और दूसरा बेतेल में (इस्राएल की यहूदा से लगती हुई सीमा पर)। इस्राएल और यहूदा के बीच अनेक गृहयुद्ध हुए।

नागरिक युद्ध और अशांति के दौरान परमेश्वर ने यहूदा और इस्राएल में अनेक नबी भेजे थे। उनमें से कुछ नबी याजक कुछ किसान, कुछ राजाओं के सलाहकार, तो कुछ अत्यन्त सादा जीवन व्यतीत करने वाले लोग थे, कुछ नबियों ने अपनी शिक्षाओं और अपनी भविष्यवाणियों को लिखा और बहुतों ने नहीं लिखा। किन्तु सभी नबी न्याय, सत्य और सहायता के लिए परमेश्वर पर निर्भर रहने का उपदेश देते रहे।

बहुत से नबियों ने चेतावनी दी कि यदि लोग परमेश्वर की ओर वापस नहीं मुड़ेंगे तो वे पराजित होकर तितर–बितर हो जायेंगे। इन नबियों में से कुछने तो भावी संवृद्धि और भावी दण्डों के दिव्य दर्शन भी किये थे। इनमें से बहुतों ने उस समय का पूर्व दर्शन कर लिया था, जब उस राज्य का शासन करने के लिए एक नये राजा का आगमन होगा। कुछ ने देखा कि वह राजा जो दाऊद का वंशज होगा एवं परमेश्वर के जनों को एक नये स्वर्णिम युग में ले जायेगा। जहाँ कुछ लोगों ने इस राजा के बारे में कहा कि वह एक अनन्त राज्य पर युगानुयुग तक राज्य करेगा तथा दूसरों ने उसे एक ऐसे सेवक के रूप में देखा जो अपने लोगों को परमेश्वर की ओर लौटाने के लिए अनेक प्रकार की यातनाएँ झेलेगा। किन्तु सबने उसे एक मसीहा के रूप में देखा, नये युग को लाने वाला परमेश्वर का एक "अभिषिक्त।"

## इस्राएल और यहूदा का विनाश

इस्राएल की जनता ने परमेश्वर की चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए 722/721 ईसा पूर्व में शोमरोन ने आक्रमणकारी अशूर के आगे घुटने टेक दिये। इस्राएल के लोगों को, उनके घरों से ले जाकर समूचे अश्शूर राज्य में फैला दिया गया, यहूदा में लोग अपने भाई–बहनों से वे हमेशा के लिए बिछड़ गये। फिर अशूरियों ने दूसरे देशों के लोगों को लाकर, इस्राएल की धरती को पुन: बसा दिया। इन लोगों को यहूदा और इस्राएल के धर्म की शिक्षा दी गयी, उनमें से अनेकों ने वाचा का अनुसरण करने का प्रयत्न किया। ये लोग सामरी के नाम से जाने गये। अशूर के लोगों ने यहूदा पर आक्रमण करने का प्रयास किया। आक्रमणकारियों के आगे बहुत से राज्यों ने घुटने टेक दिये, किन्तु यरूशलेम की परमेश्वर ने रक्षा की। अशूर का पराजित राजा अपनी मातृभूमि लौट आया और वहाँ अपने ही दो पुत्रों के हाथों मारा गया। इस प्रकार यहूदा की रक्षा हुई।

कुछ समय के बाद, यहूदा के लोग बदल गये और थोड़े समय के लिये, वे परमेश्वर की आज्ञा मानने लगे किन्तु अन्त में वे भी पराजित हुए और तितर–बितर हो गये। बाबेल शक्तिशाली हो गया और उसने यहूदा पर धावा कर दिया। पहले तो बंदी के रूप में उन्होंने वहाँ से कुछ महत्वपूर्ण लोगों को ही लिया किन्तु कुछ वर्ष बाद 587/586 ई.पूर्व में यरूशलेम और मन्दिर को नष्ट करने के लिए एक बार वे फिर लौटे। कुछ लोग बचकर मिस्र भाग गए किन्तु अधिकांश को दास बना कर बाबेल ले जाया गया। परमेश्वर ने लोगों के पास फिर नबियों को भेजा और लोगों ने उन की बातों पर ध्यान देना शुरू कर दिया। मानो, मन्दिर और यरूशलेम के विनाश और बाबेल में देश–निकाला, लोगों में एक वास्तविक परिवर्तन ला दिया। नबियों ने नये राजा और उसके राज्य के बारे में बहुत कुछ कहने लगे। जिनमें से एक नबी यिर्मयाह ने तो एक नई वाचा की भी बात कही। यह नई वाचा, पत्थर की पट्टियों पर नहीं लिखी होगी बल्कि यह परमेश्वर के भक्तों के हृदय में लिखी होगी।

## पलिस्तीन को यहूदियों की वापसी

इसी दौरान, कुस्रू, मध्य फारस का शासक बन गया और उसने बाबेल को जीत लिया। कुस्रू ने लोगों को अपने देश में लौटने की आज्ञा दी। इस तरह सत्तर वर्ष के "देश–निकाला" के बाद यहूदा के बहुत से लोग अपने घर वापस लौटे। लोगों ने अपने राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न किया किन्तु फिर भी यहूदा छोटा और कमज़ोर ही बना रहा। लोगों ने फिर से मन्दिर का निर्माण किया परन्तु यह मन्दिर उतना सुन्दर नहीं बन पाया जितना सुलैमान का बनवाया मन्दिर था। बहुत से लोग सच्चाई के साथ परमेश्वर की ओर मुड़े और नियमों, नबियों के अभिलेखों तथा अन्य पवित्र ग्रन्थों का अध्ययन करने

लगे। उनमें से बहुत से लोग लेखक (विशेष प्रकार के विद्वान) बने, जो शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार किया करते थे। धीरे–धीरे इन लोगों ने शास्त्रों के अध्ययन के लिए पाठशालाओं की स्थापना की। लोगों ने सब्त के दिन (शनिवार) को अध्ययन, प्रार्थना और एक साथ मिलकर परमेश्वर की आराधना के लिए एकत्र होना प्रारम्भ किये। अपने धर्मसभाओं में लोग शास्त्रों का अध्ययन करने लगे और बहुत से लोग आने वाले मसीहा की प्रतीक्षा में जुट गए।

पश्चिम में, सिकन्दर महान ने यूनान पर अपना शासन स्थापित कर लिया और शीघ्र ही उस ने विश्व के अधिकांश हिस्सों पर विजय प्राप्त की। उसने दुनिया के बहुत से भागों में यूनानी भाषा, रीति–रिवाज तथा वहाँ की संस्कृति का प्रचार किया। किन्तु जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका राज्य विभाजित हो गया और शीघ्र ही एक ऐसे राज्य का उदय हुआ जिसने उस समय तक के ज्ञात विश्व के एक बड़े भाग पर काबू पा लिया। इसमे पलिश्तीन भी शामिल था, जहाँ यहूदा के लोग रहा करते थे।

रोम के ये नये शासक, प्राय: बहुत क्रूर और अत्याचारी हुआ करते थे, तथा यहूदी अभिमानी और स्वभाव से ही विद्रोही थे। अशांति के इन दिनों में बहुत से ऐसे यहूदी थे जो अपने जीवन काल में ही मसीह के प्रकट होने की प्रतीक्षा करने लगे थे। यहूदी बस यह चाहते थे कि मात्र परमेश्वर का और उस मसीह का शासन हो जिसे भेजने का उन्हें परमेश्वर ने वचन दिया था। वे यह नहीं समझते थे कि परमेश्वर की यह योजना है कि वह मसीह के द्वारा जगत के लोगों का उद्धार करेगा, वे तो यही सोचते थे कि परमेश्वर की योजना सिर्फ यहूदियों को ही बचाने की है। कुछ यहूदी परमेश्वर द्वारा भेजे जाने वाले मसीह की प्रतीक्षा करने में ही सन्तुष्ट थे, किन्तु दूसरों ने नये राज्य की स्थापना में परमेश्वर की "सहायता" पाने का निश्चय किया, ये यहूदी ही धर्मोत्साही "जिलौत" कहलाए। इन धर्मोत्साहियों ने रोमियों के विरुद्ध युद्ध करने का प्रयत्न किया तथा उन यहूदियों की हत्या भी की जिन का रोमियों के साथ सहयोग हुआ करता था।

## यहूदी धार्मिक समुदाय

पहली शताब्दी ई.पूर्व तक मूसा की व्यवस्था यहूदियों के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो गयी थी। लोगों ने इस व्यवस्था का अध्ययन किया था और उस पर वाद विवाद किया था। लोगों ने इस व्यवस्था को अनेक ढंगों से समझा परन्तु कुछ यहूदी इस व्यवस्था के लिए मरने तक को तैयार थे। यहूदियों में तीन प्रमुख धार्मिक समुदाय हुआ करते थे, और प्रत्येक समुदाय के अपने उपदेशक (विधि ज्ञाता या शास्त्री) थे।

## सदूकी

इनमें से एक समुदाय का नाम था सदूकी। हो सकता है यह नाम सादोक नाम से आया हो। सादोक, राजा दाऊद के समय का प्रमुख याजक हुआ करता था। बहुत से याजक और अधिकारी लोग, सदूकी थे। ये लोग केवल व्यवस्था को (मूसा की पाँच किताबों को) धार्मिक विषयों में प्रमाण स्वरूप माना करते थे। याजकों और बलियों के विषय में तो (मूसा की व्यवस्था) व्यवस्था बहुत सी बातें सिखाती थी, परन्तु मृत्यु के बाद के जीवन के बारे में वह कुछ नहीं बताती थी। इसलिए सदूकी मृत्यु के बाद, लोगों के पुनरुत्थान में विश्वास नहीं करते थे।

## फरीसी

यहूदियों का दूसरा धार्मिक समुदाय फरीसी कहलाता था। यह नाम हिब्रू भाषा के एक ऐसे शब्द से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है "व्याख्या करना" अथवा "अलग करना।" इन लोगों ने सर्वसाधारण जनता को मूसा की व्यवस्था सिखाने अथवा उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न करते थे। फरीसियों का विश्वास था कि एक मौखिक परम्परा जो मूसा के समय तक चली आयी थी। उनका कहना था कि हर पीढ़ी के व्यक्ति मूसा की व्यवस्था की इस प्रकार व्याख्या कर सकते हैं जो उस पीढ़ी के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करती हो। इसका अर्थ यह हुआ कि फरीसी न केवल मूसा की व्यवस्था को ही बल्कि नबियों, पवित्र ग्रन्थों और यहाँ तक की अपनी परम्पराओं को भी अधिकृत रूप में माना करते थे। ये लोग व्यवस्था की विधि और अपनी परम्पराओं का बड़ी कठोरता से पालन करने का प्रयत्न करते थे। इसलिए, वे क्या खाते और छूते हैं इस के प्रति बड़े सावधान रहते थे। वे हाथ धोने और स्नान करने का बहुत ध्यान रखते थे। ये लोग मृत्यु के बाद पुनरुत्थान में भी विश्वास रखते थे क्योंकि वे समझते थे कि अनेक नबियों ने यह कहा है कि पुनरुत्थान होगा।

## इसीन

तीसरा प्रमुख समुदाय था इसीन। यरूशलेम में बहुत से याजक उस रूप में जीवन यापन नहीं करते थे जिस रूप में परमेश्वर चाहता था। इसके अतिरिक्त रोमियों ने बहुत से महायाजक नियुक्त कर दिये थे और इनमें से बहुत से मूसा की व्यवस्था के अनुसार याजक बनने के योग्य नहीं थे। इसलिए इसीन समुदाय के लोग यह नहीं मानते थे कि यरूशलेम में उपासना और बलियाँ उचित रूप से सम्पन्न हो रही है। इस कारण इसीन समुदाय के लोग, यहूदिया के रेगिस्तान में रहने के लिये चले गये थे। उन्होंने अलग से अपना एक समाज बना लिया था जहाँ केवल इसीन लोग ही आ सकते थे, और निवास कर सकते थे। इसीन लोग उपवास रखा करते थे, प्रार्थना किया करते थे और इसकी प्रतीक्षा करते थे कि परमेश्वर मसीह को भेजेगा और मन्दिर तथा याजकत्व को पवित्र करेगा।

## नया नियम

परमेश्वर ने अपनी योजना प्रारम्भ कर दी। उसने एक विशेष राष्ट्र को चुना। वहाँ के लोगों के साथ, उसने एक वाचा की जिससे वे परमेश्वर के न्याय और उसकी भलाइयों को समझने के लिए तैयार हो जायें। एक नयी और बेहतर वाचा पर आधारित एक सम्पूर्ण "आध्यात्मिक राज्य" की स्थापना के द्वारा संसार को शुभाशीष देने की योजना को नबियों और कवियों के द्वारा उसने प्रकट किया। यह योजना, मसीह के आगमन की प्रतिक्षा के साथ शुरू होगा। नबियों ने उसके आने के बारे में बड़े विस्तार के साथ बताया था। उन्होंने बताया कि मसीह का जन्म कहाँ होगा, वह किस प्रकार का व्यक्ति होगा और उसे किस प्रकार के काम करने होंगे। अब वह समय आ चुका था जब मसीह को आना था और नई वाचा को शुरू करना था। नये धर्म–नियम के लेख बताते हैं कि परमेश्वर का नया नियम किस प्रकार प्रकट हुआ और यीशु ने उसे किस प्रकार कार्यान्वित किया, यीशु जो मसीह था (अर्थात् "एक अभिषिक्त" मसीह)। ये लेख बताते हैं कि यह नई वाचा, सभी लोगों के लिए थी। यह भी बताया गया है कि परमेश्वर के इस दयापूर्ण प्रेम–उपहार को पहली शताब्दी के लोगों ने किस प्रकार ग्रहण किया। और वे किस प्रकार इस नयी वाचा का अंग बन गये। ये लेख यह भी सिखाते हैं कि परमेश्वर के भक्तों को इस संसार में जीवन कैसे बिताना चाहिए। ये उन वरदानों की भी व्याख्या करते हैं जिन्हें, परमेश्वर ने अपने भक्तों को एक सम्पूर्ण और सार्थक जीवन यहाँ बिताने के लिए वचन दिए थे; और मृत्यु के बाद उसके (परमेश्वर के) साथ।

नया नियम में कम से कम आठ अलग–अलग लेखकों की सत्ताईस विभिन्न पुस्तकें सम्मिलित हैं। इन सभी लेखकों ने यूनानी भाषा में लिखा है। यह भाषा पहली शताब्दी के संसार में व्यापक रूप से बोली जाती थी। इनमें आधे से भी अधिक लेख चार प्रेरितों के द्वारा लिखे गये हैं। ये प्रेरित अपने विशेष प्रतिनिधियों या सहायकों के रूप में यीशु द्वारा चुने गये थे। इनमें से तीन, मत्ती, यूहन्ना और पतरस इस धरती पर यीशु के जीवन के दौरान उसके बारह निकटतम अनुयायिओं में से थे। एक अन्य लेखक था, पौलुस जिसे यीशु ने अद्‌भूत प्रकार से दर्शन देकर, आगे एक प्रेरित के रूप में चुना था।

पहली चार पुस्तकें "गॉस्पल" या "सुसमाचार" कहलातीं हैं। इनमें यीशु मसीह के जीवन और मृत्यु के अलग–अलग विवरण दिये गये हैं। ये पुस्तकें यीशु के उपदेशों, इस धरती पर उसके प्रकट होने के प्रयोजन तथा उसकी मृत्यु के महत्व पर बल देती है न कि मात्र उसके जीवन के ऐतिहासिकतथ्यों पर। यूहन्ना का सुसमाचार ("गॉस्पल") उन चारों पुस्तकों में एक विशेष सच्चाई रखता है। पहले तीन सुसमाचार ("गॉस्पल") विषयों के आधार पर एक समान हैं। वास्तव में एक पुस्तक की अधिकांश विषय सामग्री दोनों अन्य पुस्तकों में एक ही जैसी प्राप्त होती हैं। जो भी हो प्रत्येक लेखक ने भिन्न प्रकार के श्रोताओं के लिए लिखा है और प्रतीत होता है कि प्रत्येक लेखक की दृष्टि में कुछ भिन्न लक्ष्य भी रहा है।

इन चार पुस्तकों के बाद जिन्हें "सुसमाचार" ("गॉस्पल") कहा जाता है, "प्रेरितों के काम" नामक पुस्तक आती है। इसमें यीशु की मृत्यु के बाद की घटनाओं का इतिहास है। इसमें बताया गया है कि यीशु के अनुयायिओं के द्वारा परमेश्वर के प्रेम का उपहार जो सभी लोगों के लिए था, समूचे संसार में किस प्रकार घोषित किया गया। यह बताती है कि इस "गॉस्पल" अथवा "सुसमाचार" के प्रचार (घोषणा) से समूचे पलिश्तीन और रोमी साम्राज्य में मसीही विश्वास को व्यापक रूप से कैसे अपनाया गया। "प्रेरितों के काम" नामक पुस्तक लूका द्वारा लिखी गयी है। उसने जो कुछ भी लिखा है, उसके अधिकांश का, वह प्रत्यक्षदर्शी था। लूका तीसरे "सुसमाचार" ("गॉस्पल") का लेखक भी था। उसकी दोनों पुस्तकों में एक तर्क–पूर्ण संगति है क्योंकि "प्रेरितों के काम" यीशु के जीवन वृतांत की सहज परिणति है। "प्रेरितों के काम" के बाद पत्रों का एक संग्रह है जो अलग–अलग व्यक्तियों अथवा मसीही समूहों के नाम लिखे गये हैं। ये पत्र पौलुस अथवा पतरस जैसे मसीही मार्ग दर्शकों द्वारा भेजे गये हैं। ये दोनों ही यीशु के प्रेरित थे। उस समय के व्यक्ति जिन समस्याओं का सामना कर रहे थे, उन से निपटने में लोगों की सहायता के लिए ये पत्र लिखे गये थे। ये पत्र न केवल उन लोगों को सूचित करने, सुधारने, शिक्षा देने और बढ़ावा देने के लिए लिखे गये थे बल्कि ये सभी मसीहियों को उनके विश्वास, पारस्परिक जीवन और संसार में उनके जीवन के सम्बन्ध में उन्हें सहायता प्रदान करने के लिए भीा लिखे गये थे।

नये नियम की अंतिम पुस्तक "प्रकाशित वाक्य" अन्य सभी पुस्तकों से भिन्न प्रकार की पुस्तक है। इसमें अति अलंकृत भाषा का प्रयोग किया गया है और इसके लेखक प्रेरित यूहन्ना ने जो दिव्य–दर्शन देखे थे उनके बारे में उन्होंने बताया है। इसके बहुत से अलंकार और बिम्ब "पुराना नियम" से लिये गये हैं और "पुराने नियम" की पुस्तकों के साथ तुलना करने के बाद ही उन्हें अच्छी तरह समझा जा सकता है। यह अंतिम पुस्तक अपने मार्ग दर्शक और सहायक यीशु मसीह तथा परमेश्वर की शक्ति द्वारा बुराई की शक्तियों पर अंतिम विजय पाने के लिए विश्वासियों को आश्वस्त करती है।

## नये नियम की पुस्तकें

निम्नलिखित विवरण, नये नियम की प्रत्येक पुस्तक को पढ़ने में सहायक सिद्ध होंगे:

मत्ती: मत्ती, यीशु के बारह नज़दीकी शिष्यों में से एक था। यीशु ने जब उसे अपने प्रेरित के रुप में चुना, उस समय वह एक यहूदी कर वसूल करने वाले की हैसियत में काम कर रहा था। मत्ती के लेखन पर उस की यहूदी पृष्ठभूमि तथा अभिरूचि

की झलक नज़र आती है। उस की विशेष अभिरुचि, पुराने नियम की भविष्यवाणियों के, यीशु के जीवन में ही पूर हो जाने की ओर थी। वास्तव में, मत्ती की पुस्तक यीशु के उपदेशों पर केन्द्रित है।

मरकुस: मरकुस कुछ प्रेरितों का एक युवा सहयोगी था। उस के लिखने की शैली संक्षिप्त व गतिशीलता से भरपूर है। मत्ती व लूका की भांति उसने, यीशु के उपदेशों की ओर इतना ध्यान नहीं दिया। मरकुस के लेखन का उद्धेश्य गैर यहूदीयों तथा रोमी बुद्धि जीवियों के दिलो को जीतना था। इसलिए वह यीशु के उन कार्यो की ओर इशारा करता है,जो साबित करते हैं कि यीशु परमेश्वर का पुत्र था। मरकुस, केवल यह चाहता है कि लोग यह बात जान जायें कि यीशु इस धरती पर हमें पाप के परिणामों से बचाने के लिये आया।

लूका: यह पुस्तक प्रेरित पौलुस के यात्रिक सहयोगी द्वारा लिखी गई दो पुस्तकों में से एक है। लूका, एक शिक्षित डाक्टर व एक प्रतिभाशील लेखक था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे मरकुस तथा मत्ती की पुस्तक का काफी ज्ञान तो था परन्तु उस ने अपनी पुस्तक में मुख्यत: उन ही भागों को लिया है जिन में उस के ग़ैर यहूदी श्रोताओं की अभिरुचि हो। अन्य "गॉस्पल" लेखकों की तुलना में, लूका यीशु के जीवन विवरण को क्रमबद्धता से और एक ऐतिहासिक वास्तविकता से पेश करना चाहता है। परन्तु ऐसा करने में वह यीशु के जीवन की घटनाओं पर ज़ोर नहीं देता है। वह यीशु को एक ऐसे रूप में पेश करता है जो अपने लोगों को जीवन का असली अर्थ देता है तथा उस की पहुँच उन सब की जरुरतों तक है। और वह पूर्ण सामर्थ्य के साथ उनकी सहायता तथा उन्हें बचाने की क्षमता रखता है।

यूहन्ना: यह "गॉस्पल", बाकी तीनों से अत्यन्त भिन्न पाया गया है। इस बात का प्रमाण हमें इस की सुन्दर तथा गंभीर भूमिका द्वारा तुरन्त ही मिल जाता है। यूहन्ना ने अपने "गॉस्पल" में वे बात प्रस्तुत की है जो अन्य "गॉस्पलों" में उपलब्ध नहीं है। उसने यीशु को इस धरती केमसीह, "परमेश्वर" केदैवी "पुत्र," तथा "मुक्ति-दाता" के रुप में प्रस्तुत किया है।

प्रेरितों के काम: लूका द्वारा रचित इस पुस्तक का आरम्भ उस की पहली पुस्तक के अन्त से होता है। शुरुआत, अपने शिष्यों को यीशु द्वारा दिये गये इस आदेश से होती है कि वह सम्पूर्ण संसार में परमेश्वर के हमारे प्रति अटूट प्रेम के "सुसमाचार" के सन्देश को फैलायें। यीशु चाहता था कि वे उसके दिव्य मिशन जिस के द्वारा लोगों को उन के पाप के परिणामों से बचाया जायेगा उस के विषय में अपने ज्ञान को दूसरों तक फैलाये़। लूका, पतरस तथा पौलुस जैसे दो मुख्य व्यक्तियों द्वारा इस कार्य के पूरा किये जाने की उत्तेजक घटनाओं को प्रस्तुत करता है। वह यह भी बताता है कि ईसाई धर्म यरुशलेम में एक लघु आरम्भ से, यहूदिया और सामरिया के चारों ओर के इलाकों से होता हुआ अन्त में रोमी राज्य तक किस शीघ्रता से फैल गया।

पौलुस की पत्रियाँ, नया नियम के लेखनों के अगले वर्ग के अंतर्गत आती है। प्रेरित पौलुस (जो पहले शाऊल के नाम से जाना जाता था) एक शिक्षित यहूदी था जिस का संबन्ध सिसली के टारसस स्थान से था। पौलुस ने यरूशलेम में शिक्षा प्राप्त की, वह फ़रीसियों का नेता था तथा शुरु में ईसाई धार्मिक आन्दोलन के सख्त खिलाफ था। यीशु ने उसे दर्शन दिया तथा उसके जीवन की दिशा ही बदल गई। दस वर्ष पश्चात उसने अनेक यात्राओं द्वारा मसीह के सन्देश को फैलाना आरम्भ किया। इस समय के दौरान उसने कलीसियाओं तथा व्यक्तियों को (ईसाई समूहों को) अनेकों पत्रियाँ लिखीं। इन पत्रियों में से तेरह का उल्लेख हमे नया नियम में मिलता है।

रोमियों को लिखी, पौलुस की पत्री उसकी सब पत्रियों में सब से लम्बी तथा सम्पूर्ण मानी जाती है। अधिकतर इस की पत्रियाँ उन शहरों के ईसाई समूहों के नाम है जहाँ उसने यीशु का सन्देश तथा कलीसियाओं को संगठित करने के काम को आरम्भ किया। रोमियों के नाम जब उसने पत्री लिखी उस समय तक वह रोम नहीं गया था। 57 ईसा पशचात् में वह यूनान में था, क्योंकि वह रोम जाने में असमर्थ था इसलिये उसने अपने उपदेश को पत्री के रूप में लिखकर भेज दिया। यह पत्री ईसाई धर्म के सैद्धान्तिक सत्य को बड़ी सावधानी से प्रस्तुत करती है।

1कुरिन्थियों तथा 2कुरिन्थियों दक्षिण यूनान के एक शहर कुरिन्थ के ईसाईयों के नाम, पौलुस द्वारा लिखी अनेक पत्रियों में से है। इन दोनों पत्रियों में पहले पौलुस वहाँ के ईसाईयों के बीच उत्पन्न हुई समस्याओं तथा उन के द्वारा किये गये प्रश्नों के कुछ उत्तर प्रस्तुत करता है जैसे ईसाई एकता, विवाह, लैंगिक पाप, तलाक तथा यहूदी रीति रिवाज आदि कुछ विषय हैं। अध्याय तेरह विशेष महत्व रखता है जिस में प्रेम के प्रसिद्ध विषय को सब समस्याओं के हल करने का साधन बताया गया है। दूसरी पत्री, कुरिन्थ के लोगों द्वारा पहली पत्री के फलस्वरुप जो जवाब दिया गया उसको आगे बढ़ाती है।

गलातियों के नाम लिखी गई पौलुस की पत्री गलेशिया के इसाईयों की एक भिन्न प्रकार की समस्या से संबन्धित है। पौलुस ने वहाँ ईसाई सन्देश की घोषणा की तथा कुछ कलीसियाओं का निर्माण भी किया। फिर वहाँ जाकर यहूदी उपदेशकों के एक समूह ने कुछ ऐसे विचारों को फैलाया जो यीशु के वास्तविक उपदेशों से बहुत ही भिन्न थे। इस प्रकार एक गंभीर समस्या

उत्पन्न हो गई क्योंकि इस का संबन्ध उस आधार से था जिस पर एक व्यक्ति तथा परमेश्वर का आपसी सम्बन्ध निर्भर करता है। गलेशिया तक यात्रा न कर पाने के कारण पौलुस ने इस पत्री के द्वारा अपने विचारों को ठोस रुप में प्रस्तुत किया। रोमियों के नाम पौलुस द्वारा लिखी पत्री की भांति यह पत्री भी इसाई धर्म के आधारों से संबन्ध रखती है केवल कारण भिन्न है।

पौलुस ने इफिसियों के नाम पत्री जेलखाने से लिखी। परन्तु हमें इस का ज्ञान नहीं है कि कहाँ और कब लिखी। इस पत्री की विषयवस्तु परमेश्वर की उस योजना से संबन्ध रखती है जिस के द्वारा पृथ्वी के समस्त लोग, मसीह के राज्य में शामिल हो जायेंगे। पौलुस ने ईसाईयों को भाईचारे से रहने तथा उनके लिये, परमेश्वर के उद्देश्य के प्रति सम्पूर्णता से अर्पित रहने की शिक्षा दी।

फिलिप्पियों को भी पौलुस ने जेलखाने से ही पत्री लिखी, यह पत्री संभवत: है रोम से लिखी गई थी। उस समय पौलुस स्वयं कई कठिनाइयों का सामना कर रहा था परन्तु परमेश्वर पर उसका अटूट विश्वास इस पत्री के लेखन के उल्लास तथा हौसले में झलकता है। फिलिप्पि के ईसाईयों को प्रोत्साहन देने तथा उनके द्वारा दी गई आर्थिक सहायता के लिये धन्यवाद हेतु यह पत्री लिखी गई।

कुलुस्सियों के नाम लिखी पौलुस की पत्री ऐशिया माईनर(टर्की)के एक शहर कोलोसे की उस कलीसिया के लिये थी जो कुछ असत्य, उपदेशों के कारण परेशान थी। इस पत्री के कुछ भाग इफिसियों के नाम लिखी पत्री से मिलते जुलते हैं। किसी ईसाई व्यक्ति को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिये इस विषय में पौलुस ने इस में व्यावहारिक सुझाव दिये हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि 1 थिस्सलुनीकियों तथा 2 थिस्सलुनीकियों पत्रियाँ पौलुस की पहली पत्रियों में से हैं। मैसेडोनिया (उत्तरी यूनान) में पौलुस की पहली यात्रा के दौरान उस ने थिस्सलुनिका के लोगों को प्रभु का सन्देश दिया। कई लोगों ने विश्वास किया परन्तु पौलुस को शीघ्र ही वह स्थान छोड़ना पड़ा। लोगों द्वारा अपनायें गये नये धर्म के प्रति प्रोत्साहन देने के लिये उसने यह पत्री लिखी। कुछ बातें जिन्हें लोग समझ नहीं पा रहे थे उनका भी उसने वर्णन किया जैसे मसीह की वापसी। दूसरी पत्री इसी विषय को ले कर आगे बढ़ती है।

पौलुस ने 1 तीमुथियुस, 2 तीमुथियुस तथा तीतुस की पत्रियों को अपने दो नज़दीकी सहयोगियों के लिये जीवन के अन्तिम भाग में लिखा। पौलुस, तीमुथियुस को इफीसुस तथा तीतुस को करेत में कलीसिया के कार्य तथा प्रबन्ध संबन्धी समस्याओं में सहायता देने के लिये छोड़ आया था। जाहिर है कि तीमुथियुस तथा तीतुस का काम था कि वे वहाँ कलीसिया को, स्वतन्त्र नेतृत्व तथा कार्यवाही के लिये तैयार करें। पहली तीमुथियुस तथा तीतुस को लिखी पत्री में पौलुस ने नेता चयन तथा समस्याओं को सुलझाने के सुझाव दिये हैं। तीमुथियुस को लिखी दूसरी पत्री उस समय लिखी गई जब पौलुस जेलखाने में था और उसे अपने जीवन का अन्त अनुभव होने लगा था। इसलिये यह पत्री व्यक्तिगत स्वभाव की है, तथा सलाह व प्रोत्साहन से भरपूर है। पौलुस तीमुथियुस को विश्वास, हौंसला तथा सहनशक्ति के प्रति अपना उदाहरण दे कर प्रेरित करता है।

फिलेमोन पौलुस द्वारा लिखी एक संक्षिप्त पत्री है और यह भी उसी समय लिखी गई जब कुलुस्सियों को उसने पत्री लिखी। फिलेमोन, कोलोसे नगर का एक ईसाई तथा एक भागे हुये गुलाम ओनेसिमस का मालिक था। इस ने पौलुस के प्रभाव से ईसाई धर्म को अपनाया। इस पत्री में पौलुस फिलेमोन से ओनेसिमस को क्षमा करने तथा उसका पुन: स्वागत करने की याचना करता है।

पौलुस की पत्रियों के अतिरिक्त यीशु के अन्य अनुयायियों ने आठ और पत्रियाँ लिखी। इब्रानियों का लेखक अज्ञात है परन्तु यह बात स्पष्ट है कि यह अवश्य ही मसीह में विश्वास रखने वाले यहूदियों के नाम लिखी गई, यीशु में जिन के विश्वास को हिलाया जा रहा था, उनके विश्वास को प्रोत्साहित तथा दृढ़ करने के लिये यह पत्री लिखी गई। लेखक ने सारे संसार में यीशु मसीह के महत्व पर सब से अधिक ज़ोर दिया है। उस का कहना है कि यीशु मसीह की अमर याजकता तथा "बेहतर समझौता" पुराने नियम की याजकता तथा "पहले समझौते" से कहीं अधिक उत्तम है। अन्त में लेखक लोगों को परमेश्वर में विश्वास करने तथा उस ही के नाम से जीवन व्यतीत करने के लिये प्रोत्साहित करता है।

याकूब की पत्री में हमेशा "व्यावहारिक" शब्द का प्रयोग किया जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि यह लेखक यीशु के भाइयों में से एक है। जब वह न्याय तथा निष्पक्षता, निर्धनो की सहायता, संसार से मित्रता, बुद्धि, आत्म नियन्त्रण, आजमाइशें, करने व सुनने तथा धर्म व कार्य के विषय में कहता है तो उस की यहूदी पृष्ठभूमि साफ दिखाई पड़ती है। उस ने लोगों को, धीरज तथा प्रार्थना के लिये प्रेरित भी किया।

1 पतरस तथा 2 पतरस की पत्रियाँ प्रेरित पतरस द्वारा उन ईसाईयों के लिये लिखी गई, जो विभिन्न स्थानों में रह रहे थे। उसने इन लोगों को सजीव आशा तथा स्वर्ग में उनके असली घर के विषय में शिक्षा दी। वे जिन कठिनाइयों में से गुजर रहे

थे पतरस ने उन्हें यह हौसला दिया कि परमेश्वर उन्हें भुला नहीं सकता और यह कष्ट उनको बेहतरी की ओर ले जायेगा। वह उन्हें यह याद दिलाता है कि परमेश्वर ने उन्हें आशीर्वाद दिया है और उनके पापों को यीशु मसीह के द्वारा क्षमा कर दिया है। इस के बदले में उन्हें सही जीवन व्यतीत करना चाहिये। 2 पतरस में लेखक ने बनावटी उपदेशकों का सामना किया और सच्चे ज्ञान तथा मसीह की वापसी की शिक्षा दी।

1 यूहन्ना, 2 यूहन्ना तथा 3 यूहन्ना की पत्रियाँ प्रेरित यूहन्ना द्वारा लिखी गई। यूहन्ना की ये प्रेम भाव से पूर्ण पत्रियाँ विश्वासियों को यह हौसला देती हैं कि परमेश्वर उन्हें हमेशा ही स्वीकार करेगा। वह यह शिक्षा देती हैं कि अपने चारों ओर के लोगें के प्रति प्रेम-भाव रखने तथा उन कामों को करने से जो परमेश्वर चाहता है, हम उस के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त कर सकते है। दूसरी तथा तीसरी पत्री ईसाईयों को एक दूसरे से प्रेम-भाव रखने की माँग तथा बनावटी उपदेशकों व अपवित्र आचरण से सावधान करती है।

यहूदा की पत्री का लेखक याकूब का भाई अतथा कदाचित् यीशु के भाइयों में से एक है। यह पत्री वफादारी को प्रोत्साहन देती है तथा फ़सादियों व बनावटी उपदेशकों के विषय में सूचित करती है।

प्रेरित यूहन्ना का प्रकाशित वाक्य नये नियम की सब पुस्तकों में से अलग प्रकार की है। इस पुस्तक में, यूहन्ना के दिव्य दर्शनों के वर्णन को अत्यन्त आलंकारिक भाषा का प्रयोग कर के, प्रस्तुत किया गया है, कई आकृतियाँ तथा प्रतिरुप पुराना नियम से लिये गये है उन्हें समझने के लिये उन की तुलना पुराने नियम के लेखनों से करना उचित होगा। इस पुस्तक द्वारा ईसाईयों को इस बात का विश्वास दिलाया जाता है कि पाप की शक्तियों पर अन्त में परमेश्वर तथा यीशु मसीह ही की विजय होगी जो उनका नेता व सहायक दोनों ही है।

## "नया नियम" और आज का पाठक

आज के, इस पुस्तक के पाठक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये पुस्तकें हज़ारों साल से भी पहले के उन लोगों के लिये लिखी गई थीं जो हमारी आज की सभ्यता से एक दम अलग सभ्यता में रहा करते थे। सामान्य रुप से इन पुस्तकों में उन जीवन-मूल्यों को रेखांकित किया गया है जो शाश्वत रूप से सत्य हैं, यद्यपि बहुत से प्रयोग किये गये ऐतिहासिक विवरण, उदाहरण और उद्धरण उस युग की संस्कृति और उस काल के कुछ ज्ञान के आधार पर ही समझे जा सकते हैं जिस युग के वे लोग थे। उदाहरण के लिए यीशु एक व्यक्ति की कहानी सुनाता है जो एक ऐसे खेत में अनाज बो रहा है जिसकी मिट्टी की दशा अलग-अलग प्रकार की है। वास्तव में, मिट्टी की वे दशाएँ क्या थीं, आज के व्यक्ति के लिये अनजानी हो सकती हैं किन्तु इस उदाहरण से यीशु जो शिक्षा प्रदान करता है, वह प्रत्येक देश अथवा काल के व्यक्ति पर पूरी उतरती है।

हो सकता है, आज के पाठक को इस ग्रन्थ में वर्णित संसार कुछ विचित्र लगे। उस समय के रीति रिवाज, प्रवृत्तियाँ, लोगों के बातचीत का ढंग, अपरिचित से लगें किन्तु तर्कसंगत यही है कि इन बातों का आज के मानदण्डों की अपेक्षा उस देश काल के मानदण्डों के आधार पर ही मूल्यांकन किया जाये। इस बात का ध्यान रखना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि बाइबल एक विज्ञान की पुस्तक के रूप में नहीं लिखी गई, वह तो ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या और मानव जाति के लिए उन घटनाओं के महत्व को प्रस्तुत करने के लिए ही मुख्य रूप से लिखी गई। इसकी शिक्षाएँ सार्वभौम सत्यों पर आधारित हैं जो विज्ञान की सीमा से परे हैं। आज के इस युग में भी यह ग्रंथ पूरी तरह प्रासंगिक है क्योंकि इसका सम्बन्ध मनुष्य की उन बुनियादी आध्यात्मिक जरूरतों से है जो कभी बदलती नहीं हैं।

बाइबल के किसी भी पाठक को इसके अध्ययन से अनेक लाभ मिल सकते हैं। उसे प्राचीनतम संसार की सभ्यता और इतिहास का ज्ञान हो सकता है, यीशु मसीह के जीवन और शिक्षाओं की जानकारी मिल सकती है और उसे इस बात का पता चल सकता है कि उसका अनुयायी होने का अर्थ क्या है उसे बुनियादी आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है, और वह सशक्त आनन्दपूर्ण जीवन जीने के व्यावहारिक ज्ञान को पा सकता है। जीवन के अत्यन्त गूढ़ प्रश्नों के उत्तर वह सहज ही प्राप्त कर सकता है। इसलिये कहा जा सकता है कि इस पुस्तक को पढ़ने के बहुत से उत्तम कारण हैं और जो पाठक इस ग्रन्थ को खुले दिल-दिमाग और जिज्ञासा के साथ पढ़ेगा वह इस रहस्य को जान जायेगा कि परमेश्वर ने यह जीवन उसे क्यों दिया है।